Click to buy NOW! PDF-XChange Viewer www.docu-track.com

बदलते समाज में शिक्षा

✧ अमन मदान

राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, उत्तराखंड एवं अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन ने मिलकर डाइट के संकाय सदस्यों के साथ "साझी समझ" नामक कार्यक्रम तैयार किया है। इस कार्यक्रम के के तहत डाइट के संकाय सदस्यों व छात्राध्यापकों के क्षमता–संवर्द्धन हेतु शिक्षा के विभिन्न आयामों पर संवाद स्थापित किया जाता है। ताकि शिक्षक प्रशिक्षण एवं विद्यालयों में सीखने–सिखाने की प्रक्रियाओं को समृद्ध एवं जीवंत बनाया जा सके। इसी क्रम में डाइट के संकाय सदस्यों के लिए 13–14 फरवरी 2013 को आयोजित एक कार्यशाला के माध्यम से अमन मदान ने शिक्षा के समाजशास्त्रीय एवं शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांतों को अनुभवजन्य शोधों के आधार पर समझने–समझाने का प्रयास किया। प्रस्तुत है कार्यशाला के सारतत्व के आधार पर तैयार आलेख ...

कार्यशाला की रूपरेखा

आमतौर पर शिक्षा को इंसान के चरित्र निर्माण और जीवन निर्वाह के लिए सक्षम बनाने के एक तरीके के रूप में देखा जाता है। शिक्षा से संज्ञानात्मक एवं भावनात्मक क्षमता के निर्माण के साथ–साथ अत्यधिक मूल्यवान समझे जाने वाले ज्ञान निर्माण की भी अपेक्षा की जाती है। हालांकि समाज शास्त्र एवं नृविज्ञान (मानव विज्ञान) बताते हैं कि शिक्षा के अर्थ को समाज के रिश्ते के बिना समझना संभव नहीं है। समाजशास्त्र व नृविज्ञान समाज के ताने–बाने और उसकी वास्तविकताओं को तलाशते हैं जो सही अर्थों में समाज को बनाते हैं। और ये वास्तविकताएं शिक्षा की भूमिका और अर्थ को कैसे प्रभावित करती हैं, इसे समझने का रास्ता दिखाती हैं। इस कार्यशाला का मकसद समाजशास्त्र के उन बुनियादी विचारों को सामने लाना है जो शिक्षा पर प्रभाव डालते हैं। कार्यशाला में समाजशास्त्र के सिद्धांतों और अनुभवजन्य शोधों पर ध्यान केंद्रित करेंगे, जो हमें यह समझने में मदद करेंगे कि समकालीन भारत में शिक्षा क्या भूमिका अदा कर रही है। यह शुरुआत वर्तमान हालात का जायजा लेने की बुनियाद हो सकती है और भविष्य को देखने का नजरिया दे सकती है।

इस कार्यशाला में समाज के तीन आयामों पर विमर्श किया गया जो शिक्षा से जुड़े हैं – एक, कार्य और सामाजिक वर्ग, दूसरा, जाति व्यवस्था के रूप व तीसरा, जेंडर के आधार पर। हमारी आज की दुनिया पिछली कुछ सदियों के दौरान हुए एक खास किस्म के उत्पादन व विनिमय के विकास द्वारा गढ़ी गई है जिसे हम अक्सर बाजार व्यवस्था या पूंजीवाद कहते हैं। इसी पूंजीवाद का असर शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों द्वारा किए जाने वाले कार्यों के स्वभाव पर पड़ता है। शिक्षा का अर्थ भी इससे प्रभावित

हुआ है। इसी के साथ–साथ औपचारिक संगठन या समाजशास्त्री जिसे "नौकरशाही" कहते हैं, का उदय हुआ जिसने अत्यधिक उत्पादकता दी और इंसानी प्रयासों को नियंत्रित किया है। इन सभी ने भारतीय स्कूलों के ढांचे पर गहरा असर डाला है। इसी के साथ–साथ इनसे कई राजनैतिक और सामाजिक प्रक्रियाएं भी उभरीं जो अर्थव्यवस्था व कार्यव्यवस्था को अलग–अलग दिशाओं में ले जाती हैं। अब हमें भिन्न–भिन्न निहित 'समूहों के समझौतों' के तहत राज्य द्वारा संचालित पूंजीवाद के दर्शन होते हैं।

इस कार्यशाला में भारत में सामाजिक वर्ग को परिभाषित करने की कोशिश की गई है। कार्यशाला में प्रतिभागियों ने सैद्धांतिक ढांचे का इस्तेमाल करते हुए कुछ अभ्यासों के द्वारा यह जांच–पड़ताल की और यह जाना कि अपने जिलों में शिक्षा और वर्ग व्यवस्था में क्या रिश्ता है। इस अभ्यास के दौरान विभिन्न क्षेत्रों की परस्पर तुलना हमें शिक्षा और वर्ग व्यवस्था की विभिन्न प्रक्रियाएं जो प्रचलन में हैं, उन्हें समझने में मदद करेगी।

राज्य द्वारा नियंत्रित पूंजीवाद की उपज ने भारत के पुराने सामाजिक ढांचे, जिसमें जाति व्यवस्था शामिल है, पर गहरा प्रहार किया है। वर्ग व्यवस्था के बुनियादी तत्वों को शामिल करते हुए उनके शिक्षा पर प्रभावों की प्रमुखता से चर्चा की गई। प्रतिभागियों ने अपने जिलों की जाति व्यवस्था को समझने की कवायद की। कवायद का फोकस था कि कौन–कौनसी बातें यथावत हैं और कौन–सी शिक्षा के हिसाब से बदल रही हैं। इस तरह हमें विभिन्न क्षेत्रों के विषम हालातों को समझने में मदद मिलेगी।

कार्य, सामाजिक वर्ग व शिक्षा

हम पहले कार्य, सामाजिक वर्ग व शिक्षा के सैद्धांतिक मसलों पर चर्चा करें और यह भी समझने की कोशिश करें कि उत्तराखंड राज्य में शिक्षा का स्वरूप क्या है? यहां का समाज किस तरह से बदल रहा है और उस बदलते समाज में शिक्षा आखिर करती क्या है?

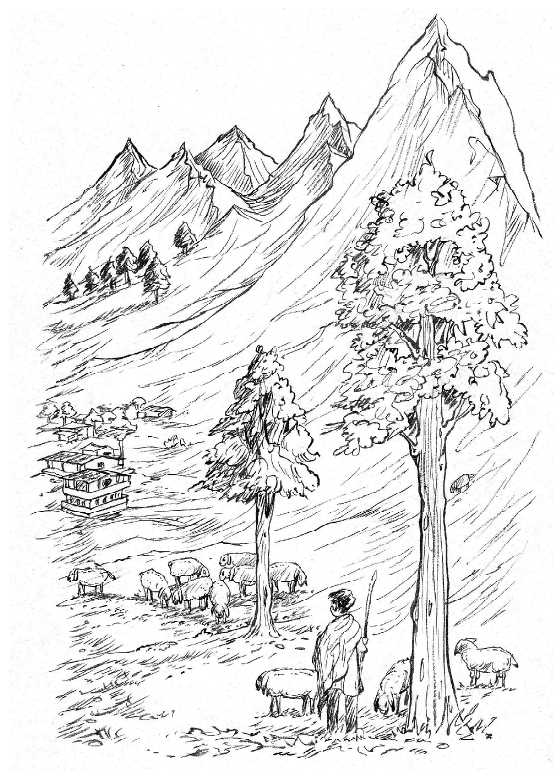

भौगोलिक दृष्टि से उत्तराखंड राज्य छोटा प्रांत नहीं है। इसमें तेरह जिले हैं तथा इसके मुख्यतः दो मंडल हैं– कुमांऊ और गढ़वाल। कुमांऊ वाले इलाके में छः जिले आते हैं– बागेश्वर, अल्मोड़ा, नैनीताल, पिथौरागढ़, उधमसिंह नगर और चंपावत। गढ़वाल में उत्तरकाशी, देहरादून, टिहरी गढ़वाल, रूद्रप्रयाग, पौढ़ी गढ़वाल, चमोली, हरिद्वार। यहां भौगोलिक रूप से तीन तरह के क्षेत्र हैं– पर्वतीय, तराई और मैदानी जिले। तो हमारे पास दो पहलू हो गए– एक भौगोलिक और दूसरा राजनीतिक।

इसमें तीन सीमांत (बार्डर) जिले–उत्तरकाशी, चमौली और पिथौरागढ़ हैं। अब हम देखते हैं कि गढ़वाल और कुमांऊ में क्या फर्क है?

यहां बोलियों का फर्क है। सामाजिक व भौगोलिक संरचना में भी फर्क है। गढ़वाल की पहाड़ियां छोटी और संकरी हैं। यहां रहन–सहन का भी फर्क है। आजादी के पहले से ही कुमांऊ, गढ़वाल से पढ़ने–पढ़ाने के मामले में बेहतर रहा था। यहां पर साठ के दशक में ही लोग बी.एससी., बी.एड. –एम.एड. करने जाते थे। कुमांऊ में खासकर महिलाओं की शिक्षा पर ज्यादा जोर रहा। अंग्रेजों के जमाने में भी यहां शिक्षा अच्छी थी।

अब हम यह देखें कि कुमांऊ में भी क्या सांस्कृतिक व सामाजिक रूप से कोई अलग–अलग तरह के समूह हैं? कुमांऊ का एक हिस्सा तराई वाला क्षेत्र है। दूसरा विकसित पहाड़ी है। तीसरा अविकसित पहाड़ी है। कुमांऊ में अल्मोड़ा जनजाति वाला क्षेत्र है।

आजादी के पहले से ही यहां दो स्कूल थे जहां से काफी लोग पढ़कर निकले हैं। तराई क्षेत्र में 1947 के विस्थापित पंजाबी और बंगाली लोग बसे। थारू व बोक्सा स्थानीय लोग हैं जो अब सिमट गए हैं। इसलिए यहां मिश्रित संस्कृति है। आज यह सबसे संपन्न क्षेत्र है।

अब हम बात करें कि इन क्षेत्रों में शिक्षा कैसी रही है। इसका फायदा यह होगा कि हम दूसरे क्षेत्रों में शिक्षा और समाज के बारे में समझ बना पाएंगे। उत्तराखंड राज्य का समाज किस तरह से बदल रहा है और उस बदलते समाज में शिक्षा क्या कर रही या नहीं कर रही है। क्या शिक्षा, समाज से जुड़कर चलती है, यह समझेंगे। हम लोग मूल रूप से यह जानने की कोशिश करेंगे कि शिक्षा का स्वरूप क्या है। शिक्षा में क्या पढ़ाते हैं क्या नहीं। शिक्षा का समाज के ढांचे से गहरा संबंध होता है तो शिक्षा का समाज के ढांचे पर क्या असर होता है?

आज के बदलते उत्तराखंड में काफी कुछ चीजें बदल रही हैं। शिक्षा गहरे रूप से समाज के चरित्र पर निर्भर करती है, हम इसे समाज से जुदा करके नहीं देख सकते। समाज में शिक्षा की भूमिका समझने के लिए हमें तीन चीजों पर ध्यान केंद्रित करना होगा :

1. ***वर्ग संरचना में बदलाव*** – *वर्ग व्यवस्था में किस प्रकार के बदलाव हो रहे हैं? क्या जैसी वर्ग व्यवस्था पहले थी वैसी ही आज भी है?*
2. ***जाति संरचना में बदलाव*** – *जाति, जनजाति या भाषाई आधार पर सामाजिक संरचनाएं क्या और कैसी हैं? इनका शिक्षा से कितना गहरा रिश्ता है?*
3. ***जेंडर संरचना में बदलाव*** – *आदमी और औरत में जैविक अंतर होते हैं, यह तो हम जानते हैं। मगर इनमें और भी अंतर समाज बनाता है। जेंडर संरचना में कोई बदलाव आया हैं या नहीं ।*

क्या इन तीनों में कोई जुड़ाव है और इनका शिक्षा से कोई रिश्ता है, यह समझेंगे। थोड़ा इस पर भी सोचें कि इस पर ध्यान देना क्यों जरूरी है?

हम समाजशास्त्र में अध्ययन करते हैं कि कौनसा बच्चा स्कूल में पढ़ पाता है और कौनसा नहीं? हम जानते हैं कि एक स्कूल में अलग–अलग पृष्ठभूमि के बच्चे आते हैं तो हमें उनके साथ कैसा संबंध रखना है। कक्षा में जो बच्चे आते हैं उनकी परफारमेंस भी अलग–अलग होती है? कक्षा वही है, उन्हें एकसा पढ़ाया जा रहा है मगर वे सीख क्यों नहीं पा रहे? तो हमारे सामने यह चुनौती है कि कक्षा में बच्चे चाहे कमजोर पृष्ठभूमि से आ रहे हैं मगर सभी बच्चे बराबरी से सीखें।

PDF-XChange Viewer
Click to buy NOW!
www.docu-track.com

आपने सांख्यिकी पढ़ी होगी। सांख्यिकी, समाजशास्त्र का एक आधार है। एक सिक्के में चित व पट होता है। अगर सिक्के को उछाला जाए तो चित या पट आने की संभावनाएं बराबर है। आपने शोले फिल्म तो देखी होगी जिसमें सिक्के के दोनों तरफ हेड होता है। इसी तरह से जुआरी लोग बदमाशी करते हैं और वे सिक्के के एक ओर वार्निश लगा देते हैं और मनचाहे नतीजे पा लेते हैं। कुछ इसी प्रकार की घटना समाज में भी घटित होती है।

उच्च शिक्षा के हालात

अगर हम इस पर भी विचार करें कि भारत में सौ में से कितने प्रतिशत लोग कॉलेज जा पाते हैं? नेशनल सेंपल सर्वे 2007–2008 के हिसाब से केवल 14 फीसदी लोग ही कॉलेज में जा पाते हैं। पिछले दिनों, एम.एच.आर.डी. के मंत्री ने घोषणा की कि यह 20 फीसदी हो गया है। भारत में, मान लीजिए कि कॉलेज जाने वालों का 20 फीसदी हैं तो बाकी देशों में क्या स्थिति है, इसको समझते हैं। हमारे पास कुछ देशों के आंकड़े हैं। जैसे स्वीडन में 95 फीसदी कॉलेज में जाते हैं। अमेरिका में 60–70 फीसदी का आंकड़ा है। भारत में अब आकर यह 20 फीसदी का आंकड़ा हुआ है। अस्सी प्रतिशत लड़के–लड़कियां कॉलेज नहीं जा पा रहे हैं।

अब हम देखें कि उत्तराखंड राज्य में कॉलेज जाने वालों की संख्या सबसे कम कहां है? तराई में बुरा हाल है क्योंकि तराई क्षेत्रों में कृषि अधिक है, मजदूर वर्ग अधिक है, इसलिए वहां पढ़ाई को महत्त्व नहीं दिया गया। पहाड़ी में ज्यादा लोग पढ़े लिखे हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में व्यवसाय की कमी रही है इसलिए पढ़ाई को महत्त्व मिला। यहां तो 12 फीसदी से ज्यादा लोग कॉलेज नहीं जाते। क्यों? क्योंकि सिक्के पर वार्निश लगी है! मतलब साफ है कि कोई ऐसी वजह है जिसके चलते वे कॉलेज नहीं जा पा रहे हैं। ऐसा नहीं कि ये बच्चे नालायक हैं, पढ़ना नहीं चाहते हैं। दरअसल, उन्हें परिस्थितियां पढ़ने से रोकती हैं। इसे हम समाजशास्त्र के नजरिए से समझने की कोशिश करें कि वे कौन से कारण हैं जो शिक्षा को प्रभावित करते हैं।

अब हम यह देखें कि भारत की जनसंख्या में लगभग आधी महिलाएं हैं मगर कितनी मुख्यमंत्री के पद पर हैं? भारत में प्रति सौ में महिलाओं की संख्या पचास या थोड़ी कम है। मान लें कि सौ में 48 महिलाएं हैं। अगर सिक्का संतुलित है तो हमारे देश में मुख्यमंत्रियों में 48 फीसदी महिलाएं होनी चाहिए। अभी अनुमानित 15 फीसदी महिला मुख्यमंत्री हैं। तो क्या राजनीति में आने में भी महिलाओं को अड़चने हैं? इसी प्रकार से कुल जनसंख्या में 29 फीसदी उच्च जाति के हैं, मगर सफाई करने वालों में कितने उच्च जाति के हैं?

मैं कानपुर में, जब आई.आई.टी. के छात्र–छात्राओं से जाति व्यवस्था पर बात करता तो वे

PDF-XChange Viewer Click to buy NOW! www.docu-track.com
PDF-XChange Viewer Click to buy NOW! www.docu-track.com

कहते थे कि ये तो पुराने जमाने की फालतू बातें हैं। मैंने कहा कि हॉस्टल में बाथरूम की सफाई करने वालों से जाति पूछना। जब वे दूसरे दिन पूछकर आए तो पता चला कि जो सफाई करते हैं सब के सब एक ही जाति के हैं। उन छात्रों की भारतीय समाज की परिकल्पना हिल चुकी थी। हालांकि जाति व्यवस्था में कई प्रकार के परिवर्तन आए हैं, तो फिर ऐसा क्यों है कि सारे के सारे सफाई करने वाले लोग एक ही जाति के हैं। आज जब हम यह कहते हैं कि जाति व्यवस्था चली गई, पर तस्वीर तो कुछ और ही कहती है। नेशनल सेंपल सर्वे के अनुसार 29 फीसदी स्वीपर एक ही जाति के हैं। तो अगर सिक्के पर वार्निश नहीं लगी हुई है तो सफाई करने वालों में भी दूसरी जाति के लोग होने चाहिए। इसका मतलब है सिक्के को कोई न कोई प्रक्रिया असंतुलित कर रही है। इस सिक्के को संतुलित कैसे किया जाए?

अब अगर स्कूली बच्चों के प्रदर्शन (परफारमेंस) में अंतर की बात करें तो सोचना होगा कि ऐसा किस कारण से होता है, इसको लेकर तीन कारण दिखाई देते हैं –

1. *आनुवांशिक (जींस) डीएनए का हो सकता है।*
2. *सामाजिक वातावरण का हो सकता है।*
3. *व्यक्तिगत प्रयास हो सकते हैं।*

अब हम यह देखें कि जेनेटिक संरचना का असर कितना होता है? आज कुल 20 फीसदी बच्चे कॉलेज जा पा रहे हैं । अगर पांच साल पीछे जाएं तो यह 14 प्रतिशत था अगर और पीछे जाएं तो यह प्रतिशत 10–12 था। तो क्या उन 80 फीसदी बच्चों के जींस में गुण कम है, बुद्धि कम है या कोई और समस्या है, तो मामला कुछ और है। अतः जो अस्सी फीसदी कॉलेज नहीं जाते हैं इसका कारण जेनेटिक (जीवशास्त्रीय) नहीं है। हो सकता है कि अस्सी फीसदी में एक–आध फीसदी में जेनेटिक समस्या हो। मगर सारे के सारे के लिए जिंस जिम्मेदार नहीं है। हो सकता है कि उनके सामाजिक परिवेश में समस्या हो, वह यह कि आखिर शिक्षा लेकर करोगे क्या? पेट पालोगे या पढ़ोगे। हो सकता है कि शिक्षा पाने के लिए फीस इतनी अधिक है कि वे अदा नहीं कर सकते, तो इतना बड़ा हिस्सा सामाजिक कारणों से शिक्षा से वंचित है। अतः शिक्षा पाने में सबसे ज्यादा भूमिका सामाजिक वातावरण की ही होती है। ऐसा नहीं है कि सामाजिक वातावरण नहीं बदल सकता। अगर ऐसा नहीं होता तो हम आज 12 से 20 फीसदी पर कैसे पहुंचते।

सामाजिक परिवर्तन

अब देखें कि समाज में किस तरह के परिवर्तन हो रहे हैं। आज का आधुनिक मानव जिसे 'होमो सेपियंस' कहते हैं, एक लाख साल पुराना है। इनके पास कोई स्कूल नहीं थे क्योंकि ये शिकार से भोजन संग्रहण करते थे। ये लोग घुमक्कड़ थे, बहुत कम सामान रखते थे। जब एक जगह पर संसाधन खत्म हो जाते तो दूसरी जगह पर जाना पड़ता था। वैसे घुमक्कड़ी स्वभाव होने की वजह से इनको सामान इकट्ठा करने की जरूरत भी नहीं थी। स्कूल की व्यवस्था अधिकांश मानव इतिहास में नहीं रही। यह बाद के समाज में आनी शुरू हुई जब मानव को ये लगने लगा कि वे सब चीजें जो आवश्यक हैं, हम बच्चों को नहीं सिखा सकते। जब मां–बाप को लगता है कि अब हम नहीं सिखा सकते तब शिक्षा आती है। शिक्षा तब आती है जब समाज में कई तरह के स्तरीकरण होते हैं।

हर समाज का अपना तरीका है। समाज कैसे चलता है, अपने काम कैसे करता है, उत्पादन कैसे करता है, और जो उत्पादन हो रहा है उसे कैसे बांट कर जीता है।

PDF-XChange Viewer
Click to buy NOW!
www.docu-track.com
PDF-XChange Viewer
Click to buy NOW!
www.docu-track.com

हमारा पूरा समाज ही जाति आधारित व्यवस्था में बंटा है। पारंपरिक जाति व्यवस्था में एक नियम रहा है कि पूरी की पूरी जाति अपना पारंपरिक काम नहीं बदलती थी। जो कुम्हार है वह यह नहीं करता कि किसान बन जाए। जो किसान है वह राजा नहीं बनेगा। सिद्धांत कहता है कि जाति व्यवस्था में लोग एक जगह से दूसरी जगह पर नहीं जाते थे, हम तो परिवर्तन की बात कर रहे हैं।

आधुनिक वर्ग व्यवस्थाएं ऐसी होती हैं जिनमें मुमकिन है कि कोई बच्चा जो किसी जाति का हो और उसके परिवार का पेशा कुछ और है लेकिन आज वह सोच सकता है कि मैं शिक्षा लेकर कोई नया रोजगार खोज लूंगा, जो मेरे परिवार का परंपरागत पेशा नहीं रहा हो। आधुनिक शिक्षा का स्वरूप जटिल जाति व्यवस्था में न होकर वर्ग व्यवस्था में ही हो सकता है। यहां हम दो तकनीकी शब्द इस्तेमाल कर सकते हैं– एक है **'अस्क्राइब्ड'** और दूसरा है **'अचिव्ड'**। **अस्क्राइब्ड (मढ़ा हुआ)**, वह जो किसी के माथे पर कोई लिख दे कि बड़े होकर क्या बनना है। **अचिव्ड (हासिल किया हुआ)** वह है जिसमें बच्चा अपनी क्षमताओं का विकास कर कोई और भी काम कर सकता है जो उसका पारिवारिक पेशा न हो।

आधुनिक वर्ग व्यवस्था में बच्चा कोई और भी काम कर सकता है। आधुनिक शिक्षा का स्वरूप एक जाति व्यवस्थाविहीन तस्वीर की बात करता है। इस तरह एक नए समाज का ढांचा बन रहा है। पर हमें यह समझना होगा कि वे बाधाएं कौन–सी हैं जो किसी बच्चे को अपने हिसाब से बनने से रोकती है।

अब हम देखते हैं कि उत्तराखंड में उत्पादन और विनिमय का तरीका क्या है और उसका शिक्षा से क्या संबंध है। मैं खासकर रिश्तों की बात करूंगा। उदाहरण के तौर पर बेंगलूरू में साल भर में जितनी बारिश होती है उससे फसल ठीक से नहीं हो पाती। इसलिए यहां शिक्षा का मुख्य मकसद नौकरी है। गांवों के अधिकांश लोग पड़ोस

के शहरों में भाग–भागकर आते हैं। खेती का हाल काफी खराब है। लोग नौकरी को शिक्षा से जोड़कर देखते हैं। अब तो जमीन के भाव काफी बढ़ गए हैं इसलिए जिनके पास खेती की जमीन है उसे बेचकर वे अरबपति बन गए हैं। आम लोग शहरों में नौकरी करते हैं और पढ़ाई के नाम पर अपने बच्चों को प्रायवेट स्कूलों में भर्ती करवाते हैं। बर्तन साफ करने वाली महिला सोचती है कि उसके बच्चे बड़े होकर लोगों के यहां बर्तन न धोएं इसलिए वह अपने बच्चों को अच्छी पढ़ाई के अवसर देना चाहती है।

इस प्रकार की बात यदि उत्तराखंड राज्य के संदर्भ में करें तो हम देखेंगे इस राज्य में व्यवसाय और रोजगार के अलग–अलग पैटर्न निकलकर आएंगे।

रोजगार के पैटर्न और शिक्षा से इनका संबंध

हम देखें कि **सीमांत उत्तरकाशी** में फल, सब्जियां, दालें, अनाज की खेती होती है। भेड़, बकरी आदि पाले जाते हैं और उनसे ऊन प्राप्त की जाती है। काफी सारा उत्पादन यहां हो रहा है। पुराने समय में यहां राजमा, सोयाबीन, चौलाई के बदले नमक, चीनी का विनिमय किया जाता था। समाज में जो उत्पादन होता था उसके बदले अन्य आवश्यकता की चीजें खरीदी जाती थीं। आज भी कुछ–कुछ जगहों पर इसका प्रचलन है। अब सीधे पैसों से चीजें खरीदी जाती है। वैसे अब उत्पादन भी काफी सीमित हो गया है। खेती सिमटती जा रही है और लोग नौकरी की तरफ अग्रसर होते जा रहे हैं। इन इलाकों में उद्योग नहीं के बराबर हैं जो थोड़े बहुत व्यवसाय बचे हैं वे भी धीरे–धीरे खत्म होते जा रहे हैं। वर्तमान में जंगल, जंगली जानवरों से खतरे और बुनियादी सुविधाओं के अभाव के चलते हर साल दस फीसदी लोगों का पलायन होता है। नतीजन शिक्षा की ओर रुझान बढ़ता जा रहा है। प्राथमिक कक्षाओं में शत–प्रतिशत बच्चे शामिल हो रहे हैं।

अब हम अन्य क्षेत्रों के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी करते चलें। **गढ़वाल** एक विकसित पहाड़ी इलाका है यहां की आर्थिक स्थिति बेहतर है। लोग सेना में भर्ती होते हैं और गांव में रह रहे अपने परिवारों के लिए मनीआर्डर से पैसा भेजते हैं। यहां के लोग बागवानी करते हैं। बागवानी के क्षेत्र में माल्टा का उत्पादन किया जाता है। दूध उत्पादन से भी काफी पैसा कमाते हैं। होटल प्रबंधन यहां काफी फला–फूला। उल्लेखनीय है कि यहां चार धाम की यात्रा होती है। इसीलिए तीर्थयात्रा से यहां की अर्थव्यवस्था पर काफी गहरा असर पड़ता है। यहां जो तीर्थ करने वाले लोग आते हैं वे पहाड़ों में पैदल नहीं चल पाते। इसलिए यहां घोड़े–खच्चर का धंधा प्रमुख है। यहां परिवहन से आय होती है। बेहतरीन आय होने से यहां के लोग बच्चों को अच्छी शिक्षा देते हैं। शिक्षा केवल नौकरी तक ही सीमित नहीं रही। हर क्षेत्र में यहां के लोग जाने लगे हैं। गांवों में बिजली–पानी और बुनियादी सुविधाओं का न होना यहां से पलायन की प्रमुख वजह है। हालांकि अब गांव लगभग खाली हो गए मगर हैं यहां शिक्षा अभी भी जारी है।

जोनसार एक अविकसित पहाड़ी इलाका है। यहां हालात और भी खराब हैं। अगर अपने गांव जाना हो तो दो–तीन दिन लगते हैं। यहां पहले से ही खेती का काम कम होता था। पहले तिब्बत से व्यापार चलता था। लुधियाना और पटियाला से माल लेकर तिब्बती मंडियां लगती थीं। 1961 के युद्ध के बाद यहां की मंडी बंद हो गई। इस प्रकार यहां रोजी–रोटी के साधन खत्म हो गए। इस वजह से यहां लोग शिक्षा की ओर आकर्षित हुए। यहां शिक्षा बढ़ी चूंकि यहां रोजगार के साधन नहीं थे। यह विडंबना है कि आज भी

Click to buy NOW! PDF-XChange Viewer www.docu-track.com

वहां कोई सुविधा नहीं है। यहां सेब और अदरक का उत्पादन काफी होता है। गेंहू, आलू और गोभी यहां होती है मगर खाने भर जितनी। इसीलिए शिक्षा पाने का अर्थ है कि नौकरी मिल जाएगी।

इस पहाड़ी व जनजातीय क्षेत्र की सामाजिक –सांस्कृतिक स्थिति अन्य क्षेत्रों से अलग है। यहां रोजगार के वैसे साधन नहीं है जो अन्य पहाड़ी क्षेत्रों में पाए जाते हैं। पहले यहां पशुपालन ज्यादा था मगर अब कम हो रहा है। यहां शिक्षा भी कम है, जादूटोना व अंधविश्वास अधिक है। इसलिए शिक्षक स्कूलों में नहीं हैं और रहना भी नहीं चाहते। 80 फीसदी शिक्षक रोज अप–डाउन करते हैं। वहां के स्थानीय लोगों के बीच के शिक्षक नहीं हैं। लोग पहाड़ों से पलायन करके मैदान में आ जाते हैं। सड़कें बनने से काफी फर्क पड़ा है मगर इसका फायदा आर्थिक रूप से संपन्न लोगों को ही हुआ है।

जबकि **तराई में** मौजूद 50 फीसदी लोग मूलतः यहीं के हैं, अन्य लोग पहाड़ों से यहां आकर बसे हैं। आज हर कोई तराई में आना चाहता है इसीलिए पहाड़ों के स्कूल खाली पड़े हुए हैं। कारण यह कि पहाड़ों में स्वास्थ्य, शिक्षा और रहन–सहन की सुविधाओं का अभाव है। तराई में शिक्षा से ही रोजगार मिला है। यहां दो जनजातियां–थारू व बोगसा हैं। ये लोग शिकारी थे। खासकर मछली का शिकार करते थे। यहां सब जातियों के लोग मिलेंगे। इस क्षेत्र का पानी अच्छा नहीं है। यह इलाका उत्तरप्रदेश के रामपुर से लगा हुआ है। आज यह विकसित क्षेत्र है मगर कॉलेज जाने वालों की संख्या फिर भी कम ही है। उत्तराखंड बनने के बाद भी यहां की स्थिति नहीं बदली। स्वरोजगार के लिए भी ज्यादा अवसर नहीं है। पर्यटन भी नहीं है। केवल एक कैलाश मानसरोवर यात्रा होती है जो दो–तीन महीने के लिए होती है। यहां जड़ी–बूटी भी नहीं है। हालांकि कीड़ा जड़ी होती है, मगर उस पर रोक है।

इतनी सारी चीजों को बनाने में अर्थ व्यवस्था और राजनीति बड़ी भूमिका अदा कर रही है। इसलिए अब हम इसकी चर्चा करें।

पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था और राजनीति की भूमिका

आधुनिक समाज को बनाने की प्रक्रिया में कई बदलाव आए हैं। कोई भी समाज स्थिर नहीं हैं, हर समाज में ऐसी परिस्थितियां होती हैं जो समाज को बदलती रहती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के पूंजीवाद और इक्कीसवीं शताब्दी के पूंजीवाद में बहुत अंतर है। मार्क्स कहते हैं कि हर समाज में वह प्रक्रिया घटित होती रही है जो समाज को बदल रही होती है।

पहले हम यह समझने की कोशिश करते हैं कि सामंतवाद से पूंजीवाद में किस तरह के बदलाव आए हैं? यहां हम सामंतवाद व पूंजीवाद की मुख्य विशिष्टताओं को देखें तो पाते हैं कि **सामंतवाद में** –निकट समूह, प्रतिष्ठा और वैवाहिक संबंधों या रक्त संबंध का प्रभुत्व होता है बजाय मुनाफे के। समाज में राजा, सामंत, पुरोहित व जागीरदार प्रभुत्वशाली होते थे। **पूंजीवाद में–** बाजार केंद्रित व्यवस्था होती है, मुनाफा मुख्य चालक शक्ति होती है, सामंती समाज की तुलना में यह ज्यादा खुला समाज होता है और पूंजी पुराने सामाजिक रूपों को खत्म करती है और नए मूल्यों को गढ़ती है। **वर्ग संरचना में बदलाव–** पूंजी पर नियंत्रण रखने वाले वर्गों की शक्तियों में बढ़ोत्तरी होती है।

सामंतवाद 1000 ईस्वी से लेकर 1800–1900 तक भारत में दिखाई देता है। यह पूरी तरह से गायब नहीं हुआ है। सामंतवाद आज भी टुकड़ों में कहीं–कहीं दिखाई देता है। सामंतवादी समाज के ढांचे में कोई शासक या राजा होगा। वह खुद खेती नहीं करता। वह किसी और की खेती का इस्तेमाल कर शासन करता है। यहां जातिगत वर्ग है, इस वर्ग में जो व्यक्ति

आता है वह जन्म से ही आता है। इसमें एक वर्ग से दूसरे वर्ग में जाना कठिन होता है।

उदाहरण के लिए, 1789 की फ्रांसीसी क्रांति सामंतवाद को तोड़ती है। सामंती समाज की खासियत थी कि जिसमें राजवंश का खून हो वही राजा बनता है। सामंतवाद में कई बड़े बंद समूह मिलेंगे। एक के ऊपर एक राजवंश, फिर उसके नीचे व्यापारी वर्ग, उसके नीचे मजदूर वर्ग। जो समाज को चलाने वाली प्रक्रिया है उसमें उद्योग, व्यापार और मुनाफा नहीं है। वहां राजा का ओहदा बढ़ता है वह ताकत और प्रतिष्ठा से चलता है नफा–नुकसान से नहीं। राजा अपने तरीके से काम करता है। उसका रुतबा, इज्जत सबसे महत्त्वपूर्ण है। पर जो व्यापारी है वह ऐसी बात नहीं करता। उसके लिए नफा–नुकसान अहम होते हैं। ऐसा मार्क्स व कईं अन्य चिंतकों का कहना था।

सामंतवाद में व्यक्ति की पहचान उसके मालिक से है जबकि पूंजीवाद में व्यक्ति किसी दूसरे के लिए काम करता है। जब समाज में मुनाफा बनना शुरू होता है तो पुराने ढ़ांचे खत्म होते जाते हैं और कई नए ढांचे बनने शुरू होते हैं।

उत्तराखंड में भी ऐसा ही है। पूंजीवाद के आने से इसमें बदलाव आया है। इसमें व्यक्ति तनख्वाह के लिए काम करता है। यहां पलायन की जो बात है उसका भी मौलिक रूप से ढांचा बदल रहा है। लोग अपने पुराने पेशे को छोड़ कर नए व्यवसाय को अपनाने को बाध्य हैं। सामंती अर्थव्यवस्था खत्म होकर पूंजीवाद में बदल रही है। पूंजीवाद के कारण लोग किसान से बदलकर वेतनभोगी बन रहे हैं, वह भी अपनी पुरानी संपत्ति छोड़कर।

पूंजीवाद के कई रूप हो सकते हैं। इसको देखने का एक तरीका रहा है वेतनभोगियों का बनना। इसको लेकर दो–तीन उदाहरण हैं– कानपुर में जब कपड़ा उद्योग लगते हैं तो उसको बड़ी तादाद में लोग चाहिए होते हैं। इसमें दस–बीस या सौ लोगों से बात नहीं बनती। उसमें हजार–हजार लोग चाहिए होते हैं। पूंजीवाद इसमें नहीं फंसता कि फैक्ट्री में उन्हीं लोगों को रखूंगा जिनका खानदानी पेशा बुनकरों का है। उसे जाति से कोई लेना–देना नहीं होता। उसे अपने काम से मतलब है, उसे सिर्फ वेतनभोगी मजदूर चाहिए। नतीजन परंपरागत जातीय संरचना पर आघात लगता है और उसकी पुरानी बुनियाद दरकने लगती है।

मैं अपना एक अनुभव साझा करता हूं– मध्यप्रदेश में अमूमन स्कूल गांव के बाहर होते हैं। मैं जहां पुस्तकालय चला रहा था वहां हरिजन रहते थे। वहां अनुसूचित जाति के बच्चे सवर्ण के घर में नहीं जा सकते। हरिजनों के घर का पानी सवर्ण नहीं पीते। जिसे सुनकर मन बड़ा खराब हो जाता था। तभी सड़क पर एक टैक्सी निकली। उसमें बीस–तीस लोग चढ़ गए। टैक्सी में बैठने वालों में सब तरह के लोग हैं तो मैंने पूछा कि जिस समाज में इतना जातिवाद व छुआछूत है, जो एक दूसरे को पानी नहीं पिला सकते तो फिर जीप में एक साथ बैठने में दिक्कत नहीं होती? तो पता चला कि इस इलाके में 15–20 साल पहले पहली बार जब टैक्सी चलनी शुरू हुई तो दलित मोहल्ले के सामने टैक्सी नहीं रोकते थे। टैक्सियां मंदिर के सामने रूकतीं। जब जीपों की तादाद बढ़ने लगी तो सवारियां मिलना कम हो गई। तो फिर वे जीप वाले क्या करते। उन्होंने तय किया कि जहां से भी सवारियां मिलेंगी वो लेंगे। मैंने पूछा कि अगर टैक्सी में बैठा सवर्ण जाति का व्यक्ति ऐतराज करता तो क्या होता? अगर कोई पूछे कि इन दलित सवारियों को क्यों बिठा रहे हैं तो क्या जवाब होगा? टैक्सी वाले ने कहा कि मैं उसे कहूंगा कि अगर ज्यादा तकलीफ हो तो उतर

जाओ। मुझे और सवारियां मिल जाएंगी। तो टैक्सी वाले का संबंध जाति से मालिक व सवारी में बदल गया। यह एक दिलचस्प मामला है, पैसे ने पुराने पारंपरिक रिश्तों को कमजोर बना दिया। उत्तराखंड में भी एक जबर्दस्त परिवर्तन हो रहा है–रिश्तों का बाजारीकरण, पुराने रिश्तों के खत्म होने व नए रिश्तों के बनने की प्रक्रिया चल रही है।

वर्ग व्यवस्था का विश्लेषण

वर्ग व्यवस्था का विश्लेषण करने के कई तरीके हैं। एक तरीका है मार्क्स का और दूसरा है वेबर का। मार्क्स के तरीके के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र का विश्लेषण करना आसान है जबकि शहरी क्षेत्र का विश्लेषण करने में मार्क्स के तरीके से दिक्कत आती है। ग्रामीण क्षेत्र में वर्ग का आधार काफी हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि जमीन किसके पास है। व्यक्ति का उत्पादन के साधनों से क्या संबंध है। यहां शिक्षा क्या करती है इस पर नजर रखिएगा। मार्क्स के अनुसार वर्ग व्यवस्था में एक बड़ा किसान, दूसरा मध्यम किसान और तीसरा छोटा किसान होता है। अब हम यह देखें कि उत्तराखंड में किस तरह के किसान हैं। कौन अपने बच्चे को पढ़ा सकता है और कहां पढ़ा सकता है यह साफ तौर पर दिखेगा। क्या किसी गांव में छोटे किसान हैं, अगर हैं तो वे अपने बच्चों की पढ़ाई के लिए क्या करते हैं। एक बात स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र का बिना जमीन वाला मजदूर और शहरी क्षेत्र में बिना खेती वाला मजदूर काफी अलग है।

बड़ा किसान– वह व्यक्ति है जो खुद जमीन पर काम नहीं करता। वह दूसरों से काम करवाता है। उनको वेतनभोगी बनाता है। **मध्यम किसान** खुद खेती में काम करता है। **छोटा किसान/सीमांत किसान–**खुद की खेती में काम करते हुए भी अपना पेट नहीं भर सकता। इसलिए वह

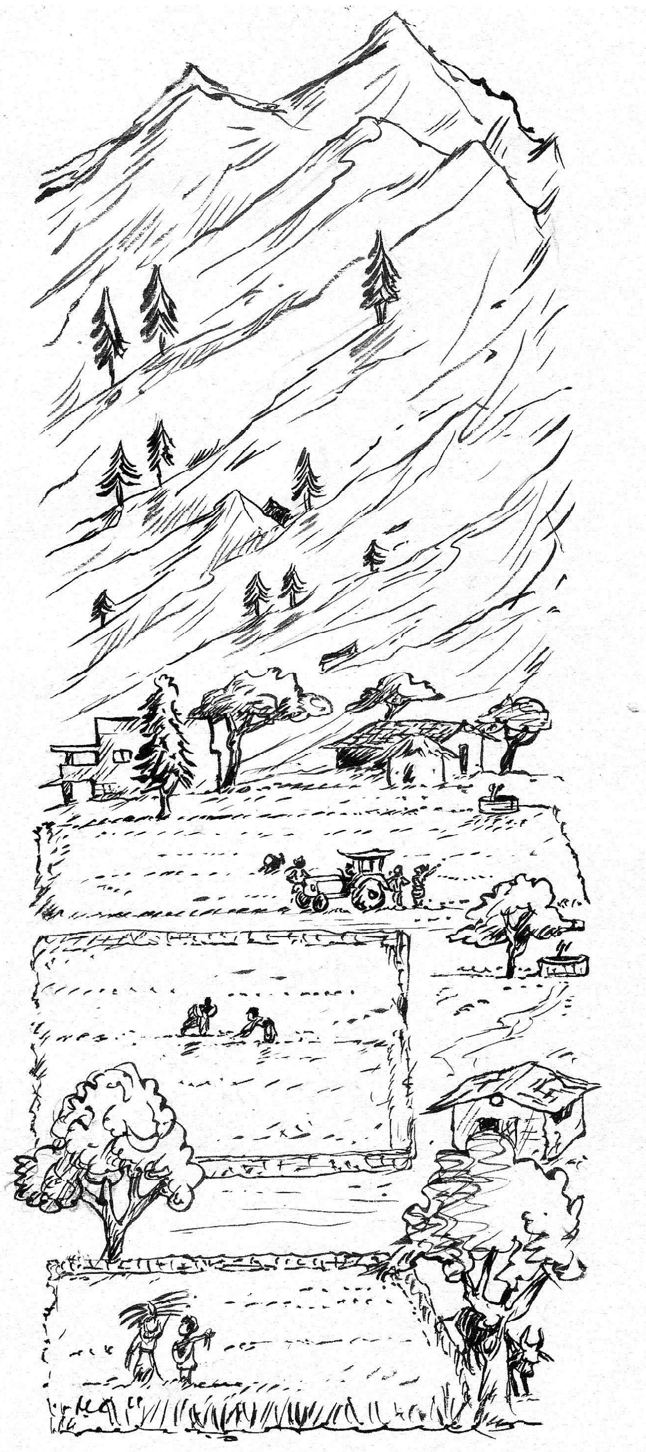

PDF-XChange Viewer Click to buy NOW! www.docu-track.com

मजदूरी करता है। **भूमिहीन मजदूर**–जो दूसरों के खेतों में मजदूरी करके अपने परिवार का भरण–पोषण करने को बाध्य होता है। **व्यापारी**– खुद उत्पादन नहीं करता। वो कहीं से चीज लेकर बेचता है और कमाता है। कार्ल मार्क्स के अनुसार व्यापारी वर्ग ने सर्वहारा वर्ग को लूटा और ये लोग बड़े बन गए हैं। **आर्टिजन** (अकुशल मजदूर)– जैसे कारीगर, दस्तकार, शिल्पी है।

आज के समय में शिक्षा का सबसे ज्यादा फायदा व्यापारी वर्ग ने ही लिया है। जाहिर है कि गरीबों, मजदूरों यानि कि सर्वहारा वर्ग को शिक्षा का फायदा मिलना चाहिए था। फिर सवाल यह है कि आज के समय में उत्तराखंड राज्य में सबसे ज्यादा फायदा किसने लिया? वैसे कौन–सा वर्ग हो सकता था जिसे फायदा मिलना चाहिए था? तो जवाब है कि सर्वहारा या खेतीहर मजदूरों को सबसे ज्यादा फायदा मिलना चाहिए था। इसके लिए हम क्या कर सकते हैं? अगर अर्थव्यवस्था इस तरह से चल रही है तो क्या कुछ किया जा सकता है?

अब सवाल यह कि समाज और शिक्षा के रिश्ते पर हम निराशावादी हों या कुछ उम्मीदें बनाएं? इसको लेकर तीन मत हैं:

पहला फंक्शनलिस्ट थ्योरी– जैसा समाज है शिक्षा वैसा ही बनाती है। अर्थात समाज के अनुसार ही शिक्षा चलती है। अगर समाज में अन्याय है तो शिक्षा भी अन्याय वाला समाज ही स्थापित करती है।

दूसरा कांफ्लिक्ट एंड रिप्रोडक्शन का सिद्धांत– शिक्षा समाज में अन्याय और गैर बराबरी को वैसे ही बनाए रखती है। इसे पीढ़ी–दर–पीढ़ी पोषित रखने का काम करती है। जब तक कोई क्रांति न आए, उसे बरकरार रखती है।

तीसरा नजरिया अन्याय और शोषण के विरुद्ध क्रांति का है। पहले क्रांति आएगी फिर शोषण कम होगा। इन तीनों नजरियों में काफी द्वंद्व होता रहता है।

मैं तीसरे नजरिए के साथ हूं। कई देशों से आशावादी समझ बनती है क्योंकि वहां खास तरीकों से ही गरीबों को शिक्षा मिलती है तो चीजें धीरे–धीरे सुधरती हैं। उदाहरण के तौर पर एक देश है जो 1850 के पहले कोई कानून नहीं बना पाया था। यूरोप के इस देश में 1850 में कानून बना था कि सभी को शिक्षा मिले। भारत में आज यह कानून बना है। इस देश में हालात बड़े खराब थे। आज के भारत से भी यह गरीब था। यह जरूरी नहीं कि पैसा हो तो सब कुछ सुधर जाएगा। सुधार के लिए राजनैतिक–सामाजिक मानस चाहिए। राजनीतिक इच्छा शक्ति हो तो बहुत कुछ बदला जा सकता है।

इस देश ने हमारे ऊपर राज किया– इंग्लैंड की बात कर रहा हूं। भारत की शिक्षा प्रणाली इसलिए खराब थी क्योंकि यहां की शिक्षा खराब थी। इस देश में एक नया मोड़ आया और यहां के नेता वर्ग को लगा कि हमें बच्चों को स्कूल में भेजना चाहिए। पहला कदम–उन्होंने कानून बनाया और साथ ही नियम भी बनाए। दूसरा कदम– कोई भी बच्चा स्कूल के बाहर मिले तो उसे पकड़कर स्कूल में ले जाया जाए। इस प्रकार के लोग उन्होंने रखें जो बच्चों को स्कूल में लाने का काम करते थे। इस काम में 20 साल लगे। जैसे भारत की समस्याएं हैं, वैसी ही वहां भी थीं। एक शिक्षक पर ढेरों बच्चे और स्कूल की व्यवस्था भी ठीक नहीं थी। शिक्षक प्रशिक्षण की कोई माकूल व्यवस्था नहीं थी।

आज हम अपने यहां इंग्लैंड वालों की पुरानी शिक्षा दे रहे हैं। उन्होंने अपनी शिक्षा को पूरा का

पूरा बदल डाला। मगर हम अभी भी वहीं के वहीं अटके हुए हैं। वहां के दूरस्थ गांव का स्कूल भी हमारे यहां के अमीर निजी स्कूल की टक्कर का है। तीसरा कदम – उन्होंने शिक्षक प्रशिक्षण को लेकर 1920 के आसपास विश्वविद्यालय को पैसा देना शुरू कर दिया। विश्वविद्यालयों में अच्छे लोगों को बिठाया। यह तो साफ था कि जब तक शिक्षक शिक्षा बेहतर नहीं होगी तब तक शिक्षक कैसे बेहतर होंगे। अच्छे शिक्षक विश्वविद्यालयों से निकलने लगे और उन्हें अच्छी नौकरी भी देनी शुरू की। इंग्लैंड के इतिहास में इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों ने बच्चों को प्राइवेट स्कूलों से निकालकर सरकारी स्कूलों में डालना शुरू किया। आज वहां छोटे से गांव में भी बढ़िया स्कूल चलता है। स्कूल में बढ़िया पुस्तकालय है और अच्छे शिक्षक हैं। असल में जब सरकारी स्कूलों में फीस कम होगी और शिक्षा बेहतर होगी तो लोग बच्चों को सरकारी स्कूलों में क्यों नहीं डालेंगे।

1950 के बाद उन्होंने सुधार शुरू किया जिसके पीछे राजनीतिक इच्छा शक्ति थी। देखिए राजनैतिक इच्छा शक्ति कैसे करामात करती है। वहां 1945 में लेबर पार्टी सत्ता में आई। इस पार्टी में बहुत सारे बुद्धिजीवी और ट्रेड यूनियन के लोग थे। यह वही पार्टी थी जिसने 1945 में पहली बार सत्ता में आकर भारत को आजाद करवाने का निर्णय लिया। 1950 के बाद इस पार्टी ने यह निर्णय लिया कि सभी लोग अच्छे स्कूलों में जाएं। तब शिक्षक प्रशिक्षण में खूब पैसा लगाया, नए स्कूल और विश्वविद्यालय खोले ताकि बच्चों को अच्छी शिक्षा मिल सके। यह सब 1950 के बाद हुआ है। राजनैतिक, सामाजिक संस्थाओं, एन.जी.ओ. और ट्रेड यूनियन के दबाव के कारण वहां स्कूलों की हालत सुधरी। इस कार्य में 100 साल लगे। जरूरी नहीं कि इतना ही समय और देशों में भी लगे। यह काम कम समय में भी हो सकता है। इंग्लैंड की शिक्षा 1970 तक आते–आते बेहतर हो गई। इस काम में वहां कोई खून की नदियां नहीं बहीं बल्कि राजनीतिज्ञों को समझाया गया कि यह कार्य अति महत्त्वपूर्ण है।

क्या यह अनिवार्य है कि भारत में शिक्षा प्रणाली खराब ही होती जाएगी? यानि कि हम भारत में किस तरह की संभावनाओं को पहचानते हैं और जुड़ते हैं। हम इसलिए पिछड़ रहे हैं क्योंकि बच्चों को शिक्षा नहीं मिल पा रही है। इसलिए नेताओं को समझ में आना जरूरी है कि शिक्षा को बेहतर बनाया जाए।

हमारे देश में भी कुछ सरकारी संस्थाएं हैं जैसे एम्स (ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेस), टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, आई.आई.टी. जो बढ़िया काम कर रहे हैं। आखिर कैसे? यह समझने का विषय हो सकता है कि आखिर वहां ऐसा क्यों हो पा रहा है। अगर हम पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका में देखें तो वहां के सारे बच्चे सरकारी स्कूलों में पढ़ने जाते हैं। वहां ऐसे तरीके खोजे गए कि सरकारी स्कूल ठीक से चलें। यदि हमारे यहां सरकारी स्कूल और सरकारी तंत्र ठीक नहीं है तो, हमें इसके रास्ते खोजने होंगे।

अमन मदान : वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, बेंगलूरू में समाजशास्त्र के प्रोफेसर हैं। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से एम.फिल व पी.एचडी. करने के बाद आपने एकलव्य, होशंगाबाद के साथ काम किया। इसके बाद आई.आई.टी. कानपुर में समाजशास्त्र का अध्यापन किया।

लिप्यंतरण : कालू राम शर्मा आप संपादक मंडल के साथी हैं।